समकालीन व्यंग्य की भाषा

मेरी भाषा सपनों की सहयात्री है
जैसे कल देखा मैंने सपना
बरस रही थी आसमान से आग
आज मेरी भाषा यह पौधा रोप रही है !

-लीलाधर मंडलोई की कविता (भाषा)

राहुल देव

9।48 साहित्य सदन,
कोतवाली मार्ग, महमूदाबाद
(अवध) सीतापुर, उप्र 261203
मो. 09454112975

व्यंग्य हो या साहित्य की कोई अन्य विधा भाषा रचना की प्राथमिक जरुरत है। यह भाषा ही है जो हमें बता देती है कि कौन कहाँ से चलकर आ रहा है।

प्रेम जन्मेजय, सुशील सिद्धार्थ, ज्ञान चतुर्वेदी, कैलाश मंडलेकर की परिपक्व व्यंग्यभाषा बताती है कि उन्होंने अपनी भाषा को दीर्घ अध्ययन व व्यापक सामाजिक अनुभवों से अर्जित किया हुआ है। शांतिलाल जैन की भाषा भी कुछ इसी तरह की है। उनमें प्रयोग अधिक हैं। सुशील जी की भाषा में लालित्य और खिलंदड़ापन अधिक है। वे भाषा से बहुत निकटता प्राप्त कर लेते हैं और फिर भाषा और लेखक एक दूसरे के साथ खेलने लग जाते हैं। उनके व्यंग्यों का केन्द्रीय विचारतत्व रचना का संतुलन बनाये रखता है जहाँ पर उनका व्यंग्य कौशल चुपचाप अपना काम करता रहता है। निर्मल जी की भाषा बताती है कि वे कविता से चलकर व्यंग्य तक आये हैं। आलोक पुराणिक और विष्णु नागर के व्यंग्यों में पत्रकारिता की भाषा का प्रभाव दिखता है। बुलाकी शर्मा और नीरज दैया की व्यंग्य रचनाओं में भाषा का राजस्थानी रंग चढ़ा हुआ मिलता है। इंदरजीत की भाषा में पंजाबी टोन मिलता है। पल्लवी की भाषा में बुन्देलखंडी ठसक, तो वहीं अभिषेक अलंकार की भाषा पर महानगरीय जीवनशैली का प्रभाव दिखता है। मलय जैन के पास भी एक मुकम्मल व्यंग्य भाषा है, तो वहीं पंकज प्रसून की भाषा दूर से ही गवाही देती मिलती है कि वे व्यंग्य की वाचिक परम्परा से आ रहे हैं।

भाषा की रवानगी का पठनीयता से सीधा सम्बन्ध है। इसलिए व्यंग्य में भाषा का प्रश्न एक जरुरी प्रश्न है जिसका उत्तर खोजा जाना चाहिए। ऊपर कुछ लेखकों की भाषाई विशेषताओं को रेखांकित करने से मेरा मतलब यह नहीं कि इससे कोई किसी से कमतर या श्रेष्ठ होता है बल्कि यह है कि आप देख सकें कि किस तरह तमाम व्यंग्यकार अपनी-अपनी भाषा और लहजे के विविध रंग व्यंग्य में बिखेर रहे हैं। ये सभी गुण व्यंग्यकारों की अपनी-अपनी निजी विशेषताएं हैं, उनका अपना परिचय है। यह परिचय जब पाठकीय संवेदना से जुड़कर गहरा हो जाता है तो फिर भाषा ही आपकी पहचान बन जाती है। कोई सिर्फ कुछ पंक्तियाँ पढ़कर ही बता देगा कि अमुक रचना अमुक लेखक ने लिखी है।

कुछ व्यंग्यकार अपने व्यंग्यों में भाषा का आतंक फैलाते हैं तो कुछ व्यंग्यकार भाषा को बड़ी सावधानी से बरतते हैं। कभी-कभी रचना लिखने में रखी गयी ज्यादा सावधानी भी रचना की आत्मा को मार देती है। इससे व्यंग्य तो उपजता है लेकिन वह अस्वाभाविक भाषा में लिखा गया कृत्रिम व्यंग्य होता है। इसके अलावा रचना के ऊपर सपाटबयानी का खतरा भी मंडराने लगता है। व्यंग्य तो जैसे तैसे पूरा हो ही जाता है लेकिन उसका प्राणतत्व भाषा का स्वाभाविक तेवर खोकर निस्तेज हो जाता है। निस्तेज व्यंग्य समय याद नहीं रखता। ऐसे व्यंग्यकारों को समझना चाहिए कि शुष्क भाषा से प्रभावी व्यंग्य पैदा नही होता। हिंदी का पाठक बहुत समझदार होता है,, लेखक की भाषाई चालाकी या अक्षमता उससे छुप नहीं सकती। वह रचना में उसे फौरन भांप लेता है।

कुछ व्यंग्यकार अपने व्यंग्यों में भाषा का आतंक फैलाते हैं तो कुछ व्यंग्यकार भाषा को बड़ी सावधानी से बरतते हैं। कभी-कभी रचना लिखने में रखी गयी ज्यादा सावधानी भी रचना की आत्मा को मार देती है। इससे व्यंग्य तो उपजता है लेकिन वह अस्वाभाविक भाषा में लिखा गया कृत्रिम व्यंग्य होता है। इसके अलावा रचना के ऊपर सपाटबयानी का खतरा भी मंडराने लगता है। व्यंग्य तो जैसे तैसे पूरा हो ही जाता है लेकिन उसका प्राणतत्व भाषा का स्वाभाविक तेवर खोकर निस्तेज हो जाता है।

हिंदी व्यंग्य में आप शरद जोशी की भाषा देखें, नरेंद्र कोहली की भाषा देखें। श्रीलाल शुक्ल तो जैसे व्यंग्यभाषा रचने में माहिर ही हैं। उनकी चर्चित कृति रागदरबारी में मुखर हुआ व्यंग्य ठेठ अवधी के ठाठ के दर्शन कराता है। परसाई की पारसाई उनकी